भारतीय संस्कृति की मूलधारा

डॉ० मधु कौशिक,

हिंदी—विभाग, रामानुजन कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

जीवन शैली और परिष्कृत जीवन मूल्यों में 'संस्कृति' को देश और काल से आबद्ध करके देखा जाता है, और देखा जाना भी चाहिए। लेकिन इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है कि किन—किन तत्वों को संस्कृति का घटक माना जाता रहा है, माना जाता है या माना जाना चाहिए। यह बात भी विचारणीय है कि किन स्वरूपों को किस देश काल की अपनी संपत्ति के रूप में स्वीकार करना चाहिए। वेशभूषा और बोलचाल के संदर्भ में बात की जाए तो क्या साडी पहनने वाली स्त्री स्कर्ट धारण करन वाली स्त्री से अधिक संस्कृति का वहन करती है या 'पति' को 'पति' न कह पाने वाली स्त्रियाँ अपने देवर का निर्देश करके उसके अग्रज का संबंध बताने में कोई संस्कृति अभिव्यक्त करती हैं ? तो क्या 'दिस इज माइ हसबेंड' कहने वाली स्त्रियाँ 'संस्कृति' विहीन हैं ?

भारत विश्व का अनुपम राष्ट्र है तो निश्चय ही इसकी संस्कृति, शिक्षा, धर्म और राष्ट्रीयता भी अद्भुत होगी; परंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारे देश में बिछी चारपाई पर लेटकर आराम करते शिष्य के कक्ष में जाकर एक कोने में जमीन पर बैठ जाने वाले गुरु, महात्मा कम नहीं हैं तो दूर रोम में धर्मगुरु पोप अपने शिष्यों के पैर चूमते हुए देखे जा सकते हैं। हिन्दी सिनेमा में भी संस्कृति के प्रचार—प्रसार में अंतर देखा जा सकता है। आज से दस—बारह वर्ष पूर्व के सिनेमा और दो—तीन वर्षों के सिनेमा में पर्याप्त अंतर देखा जा सकता है। मोबाइल और इन्टरनेट की संस्कृति ने भी हमारी संस्कृति की मूलधारा के स्वरूप में परिवर्तन का समावेश किया है या नहीं ? इन प्रश्नों के समाधान के लिए संस्कृति के स्वरूप पर विस्तृत विचार विश्लेषण अपेक्षित है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'संस्कृति' के विषय में लिखा है — "संसार में जो भी सर्वोत्तम बातें कही गई हैं, उनसे अपने आप को परिचित कराना संस्कृति है।"[1] 'संस्कृति' शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण है। यह मन, आचार तथा रुचियों की शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है। दिनकर ने भारतीय संस्कृति में चार क्रांतियों की ओर ध्यान दिलाते हुए अपने ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है — "भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रांतियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रांतियों का इतिहास है। प्रथम क्रांति : आर्यों का आर्येत्तर जातियों से संपर्क, द्वितीय क्रांति : महावीर और बुद्ध का स्थापित वैदिक धर्म के विरूद्ध विद्रोह, तृतीय क्रांति :इस्लाम धर्म का आगमन और चतुर्थ क्रांति : आधुनिक भारत में यूरोप का प्रवेश जिनसे संपर्क में हिन्दुत्व और इस्लाम इन दोनों में नवजीवन का उन्मेष हुआ है।"[2] भारत की संस्कृति आरंभ से ही सामाजिक रही है। इस देश की प्रत्येक दिशा में रहने वाले व्यक्ति की संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी सामाजिक संस्कृति की विशेषता है।

'संस्कृति' किसी देश या जाति की आत्मा है। इससे उन सब संस्कारों का बोध होता है जिसके सहारे मनुष्य अपने सामूहिक या सामाजिक जीवन के आदर्शों का निर्माण करता है। संस्कृति को व्याख्यायित करना कठिन है।

परंतु 'संस्कृति' के शाब्दिक स्वरूप की चर्चा करें तो कहा गया है – 'संस्करोति इति संस्कृति' अर्थात संस्कृति वह है जिसमें संस्करण होता है। डॉ० राजेन्द्र पांडे ने लिखा है कि –"संस्कृति शब्द सम उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से निष्पन्न होता है। यह परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है ।"[३] भारतीय संस्कृति की व्याख्या करने वाले एवं सच्चे उपासक वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है –

"वास्तव में संस्कृति वह है जो सूक्ष्म एवं स्थूल, मन एवं कर्म, अध्यात्म जीवन एवं प्रत्यक्ष जीवन का कल्याण करती है।"[४] अतः संस्कृति का शाब्दिक अभिप्राय है परिष्कार या शुद्धि। यह आचरणगत सभ्यता का वह रूप है जो मानसिक तथा आध्यात्मिक विशेषताओं से संपृक्त है। अँग्रेजी में 'संस्कृति' शब्द के लिए 'culture' शब्द का प्रयोग किया जाता है। लैटिन भाषा से निकला यह शब्द 'cultura' से बना है। आंग्ल विद्वान टाइटलर ने इस शब्द की प्रतिस्थापना की थी। इसे अँग्रेजी में पशुपालन और कृषि के अर्थ में प्रयोग किया जाता था। अनेक शब्दकोशों में 'संस्कृति' शब्द को विविध अर्थों में रूपायित किया गया है। 'बृहद हिंदी कोश' में 'संस्कृति' के परिष्कार, निर्माण, पवित्रीकरण, सजावट, आचरणगत सभ्यता, उद्योग आदि अर्थ दिए गए हैं। 'प्रामाणिक शब्दकोश' में शुद्धि, सफाई, सुधार, किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार–विचार, कला–कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में विकास की सूचक होती है। वास्तव में संस्कृति मनुष्य और उसकी कृतियों के प्रत्येक अंग और स्वरूप का संतुलन है।

भारतीय संस्कृति न तो एक काल में विकसित हुई और न यह रूढ़िवादी बनकर ही रही। आदिकाल से ही यह एक शिला के रूप में अविचल रही। अन्य सांस्कृतिक लहरों के थपेड़ों ने भारतीय संस्कृति पर आघात तो किया परंतु ये आघात हमारी संस्कृति के मूल स्वरूप को नहीं बदल सके। अनेक विदेशियों ने समय–समय पर भारत में शासन किया। भारत ने भी उनके गुणों को अपनाते हुए उसे अपना अंग बना लिया। विदेशियों के आक्रमण और आगमन से नई राजनैतिक संस्कृति का निर्माण एवं प्रसार हुआ तथा साथ ही साथ संस्कृति के अन्य तत्वों का भारतीय संस्कृति के साथ मिश्रण भी हुआ। 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम यजुर्वेद में मिलता है। 'शतपथ ब्राह्मण' और 'एतरेय ब्राह्मण' में भी इसका प्रयोग मिलता है। डॉ० श्यामसुंदर दास ने 'हिंदी शब्द सागर' में संस्कृति शब्द को रहन–सहन की रुढ़ि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। किसी ने इसे धार्मिक निष्ठा कहा तो किसी ने परंपरागत अनुस्यूत संस्कार। 'संस्कृति' शब्द का सरोकार 'संस्कार' और 'सभ्यता' से माना गया है। संस्कृति और सभ्यता से वैसे तो एक ही प्रतीत होती हैं पर वास्तव में ये दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। संस्कृति आभ्यांतर है, सभ्यता बाह्य है। संस्कृति को अपनाने में देर लगती है जबकि सभ्यता का अनुकरण सरलता से किया जा सकता है। संस्कृति का संबंध निश्चय ही धार्मिक विश्वास से है जबकि सभ्यता सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति से बंधी है। सभ्यता के अनुकरण में देश, जाति और वर्ण का कोई स्थान नहीं है; पर संस्कृति में सबका समावेश रहता है। उदाहरण के रूप में पाश्चात्य सभ्यता यूरोप के अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका में भी पाई जाती है; पर उनकी संस्कृतियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। संस्कृति में धर्म और भाषा की प्रधानता को नकारा नहीं जा सकता; परंतु दोनों की अनिवार्यता भी संस्कृति की कसौटी नहीं है। चीन, अरब, पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के लोग इस्लाम धर्म को स्वीकारते हैं। इन देशों के लोगों की लौकिक और परलौकिक विचारधारा एक ही है; परंतु फिर भी ये एक–दूसरे से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। इसी तरह रहीम, जायसी, बंगाल के हुसनेशाह, ये सब मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति के अंग हैं। वास्तव में संस्कृति वह शक्ति है जिसे मनुष्य अपने धर्म, संस्कार,

और वातावरण से पाता है और यही उसे प्रेरणा देती है। अतः एक ही धर्म के होने से संस्कृति भी एक हो ऐसा आवश्यक नहीं है। किसी विद्वान ने सच ही कहा है – "सभ्यता मनुष्य के मनोविकारों की द्योतक है। संस्कृति आत्मा के अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है। सभ्यता मनुष्य को प्रगति की ओर ले जाने का संकेत करती है तो, वहीं संस्कृति उसकी आंतरिक और मानसिक कठिनाइयों पर काबू पाने में सहायक सिद्ध होती है।" कई क्षेत्रों में अशांति पैदा हुई और विविध समस्याएँ भी उत्पन्न हुई पर भारतीय संस्कृति के मूल रूप को वे परवर्तित नहीं कर सके।

भारतीय परंपरा के अनुसार धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, वर्ण और संस्कार आदि अवयवों के आधार पर ही संस्कृति का विवेचन एवं वर्णन किया जाता है। इन अवयवों में परस्पर विरोधी धरातल होते हुए भी ये संस्कृति में स्थान पाते हैं। जैसे गीता में मिलने वाला कर्मयोग और काव्यों में मिलने वाला श्रृगार और विलास दोनों ही संस्कृति का हिस्सा हैं। आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति की आधारशिला धार्मिक सहिष्णुता और उदारता रही है। ऋग्वेद में कहा गया है – ''एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति।'' अर्थात शक्ति तो एक है, स्वरूप उसके भिन्न – भिन्न हैं; इसलिए पारस्परिक विरोध के स्थान पर उदारता होनी चाहिए। परमात्मा के अद्वैत स्वरूप को स्वीकार करना चाहिए औए धार्मिक विचारवादियों में वैमनस्य नहीं होना चाहिए। यही भारतीय संस्कृति का मूल सिद्धान्त रहा है। कुछ लोगों ने सम्राट अशोक को विश्वधर्म प्रवर्तक कहते हुए उनकी धार्मिक उदारता को भी सराहा है; किन्तु भारत में यह धारा पहले से ही प्रवाहित थी; परंतु वर्तमान में सत्ता के परिप्रेक्ष्य में राजनीति के चूल्हे में धर्म की आग जलाकर उस पर सत्ता की रोटियाँ सेकने वालों की भी कमी नहीं है। ऐसे प्रश्न उठना लाज़मी हो जाता है कि क्या धर्म के सभी रूप संस्कृति के क्षेत्र में अधिकार पाने के अधिकारी हैं ? मनुष्य की धार्मिक स्वतन्त्रता का हनन करने वाले धर्म क्या संस्कृति के गौरव को बढाते हैं ? जिन धर्मों में अत्याचार और अनैतिकता को स्थान मिला है क्या वे हमारी संस्कृति को सुसज्जित करने के आभूषण स्वरूप हैं ? क्या धर्म केवल श्रद्धा का स्थापन और श्रद्धामय आचार है ? हमारी संस्कृति का आधार 'कला' में उपस्थित सौंदर्य में अध्यात्म की पवित्र भावनाओं से लेकर विलास का अश्लीलतम् रूप तक उपस्थित है। क्या कला केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति है ? फिर इस सौंदर्य का मानव जीवन से क्या संबंध ? क्या कला का उत्तरदायित्व जीवन का मंगल है या फिर 'कला' कला के लिए है ? संस्कृति के अवयवों के विविध रूपों तथा विरोधी स्थितियों के कारण इससे सम्पन्न संस्कृति की रूपात्मक कल्पना पूर्ण नहीं है। संस्कृति केवल धर्म, दर्शन, कला आदि का समाहार मात्र नहीं है। वरन यह एक स्वतंत्र साधना है। इस स्वतंत्र साधना का अपना रूप और तत्व है। धर्म, दर्शन, और कला के अपने–अपने रूप हो सकते हैं; परंतु जब इनके रूप संस्कृति के तत्व को साकार रूप प्रदान करते हुए उसके अंग स्वरूप बन जाते है तभी ये संस्कृति कहलाने के अधिकारी बनते हैं।

संस्कृति के निर्माण में समाज और परिवेश की जितनी भूमिका होती है उतनी ही साहित्य की भी। आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं – "संस्कृति को समझने का एक महत्वपूर्ण आधार तथा उपकरण साहित्य होता है। संस्कृति की आत्मा की झलक साहित्य के भीतर मिलती है। संस्कृति के संदेश को जनमानस तक पहुंचाने के कारण साहित्य संस्कृति का वाहन होता है।"[६] मोहन राकेश की पुस्तक 'साहित्य और संस्कृति' में रमेश गौड़ के प्रश्न – "क्या समकालीन हिन्दी कहानी में भारतीयता जैसा कोई तत्व अनिवार्य है ? और अगर हाँ, तो वह भारतीयता आखिर है क्या ? इसके उत्तर में कमलेश्वर ने कहा – निश्चित रूप से है। वह भारतीयता हमारे साथ ऐतिहासिक

संस्कार के रूप में मौजूद है। वह भारतीयता जीवन के आधारभूत मूल्यों के रूप में हमारे सामने है – वे मूल्य जो अभी तक रूढ या क्षीण नहीं हुए हैं। किसी प्रमुख हिन्दी कहानी में अब तक किसी पिता की हत्या बेटे द्वारा नहीं हुई या किसी माँ को वेश्या कहकर बेटे ने घर से नहीं निकाला है या किसी बहन ने अपनी यौन – पिपासा की तृप्ति अपने भाई से नहीं खोजी है। केवल पारिवारिक मूल्य ही नहीं, बल्कि सामाजिक या व्यक्तिगत मूल्यों में भी वह भारतीयता अब भी मौजूद है, और रहेगी।"[७] कमलेश्वर ने भारतीयता के आग्रह को न केवल समकालीन कहानी में अपितु समूची हिन्दी कहानी में स्वीकार किया है। यद्यपि प्रेमचंद की यथार्थ में आस्था आदर्श के लिए ही थी। इनके लिए यथार्थ साधन था और आदर्श साध्य। जबकि नई कहानी आंदोलन के वाहको के लिए यथार्थ ही साध्य रहा। वस्तुतः हमारा कहानी साहित्य निश्चय ही भारतीय जीवन–बोध को स्वीकार करता है तथा पशचिमी रूग्ण मानसिकता के जो कुछ प्रभाव दिखाई भी पड़े तो वे हिन्दी–कहानी की मुख्य धारा का अंग नहीं बन सके। समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक पुनरूत्थान दृष्टिगत नहीं होता। यह युद्ध और विभाजन के बाद उत्पन्न परिस्थितियों और समय के यथार्थ को प्रकट करता है।

भारतीय संस्कृति प्राचीन संस्कृति है। इसे सनातन संस्कृति, आर्य संस्कृति अथवा हिन्दू और वैदिक संस्कृति के नामों से भी जाना जाता है। इसकी गंभीरता, सूक्ष्मता, व्यापकता और समृद्धि को आंकना असंभव है। अतः भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने का काम भारतीय ग्रन्थों, तीर्थ स्थान और यहाँ के महापुरुषों ने किया। इन प्रमुख ग्रन्थों में वेद, उपनिषद, शास्त्र, दर्शन, पुराण रामायण, महाभारत, रसशास्त्र, भाषाशास्त्र, छंदशास्त्र, साहित्य–शास्त्र, विविध कला, रामचरितमानस, आरण्यक, वेदांग, जैनागम, गुरुग्रंथ–साहब आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। चतुष्पीठ (चार धाम) और महापुरुषों के संदेश, आचरण और कार्य–व्यवहार ने भारतीय संस्कृति को उन्नतिशील और जाग्रत बनाया है। भारत की भौगोलिक स्थिति, पर्वत, पठार, नदियाँ, समुद्र, नगर, तीर्थ–स्थान सभी सांस्कृतिक दृष्टि से जीवन को गतिशील बनाते हैं, साथ ही हमारे इतिहास का बोध भी कराते हैं। यद्यपि भारत में अनेक प्राकृतिक भूखंड, जीव–जन्तु, जलवायु विद्मान है; किन्तु प्रकृति ने इसे एकीकृत देश बनाया है। जहाँ गंगा–यमुना तहजीब हमारी संस्कृति की विरासत है वहीं धार्मिक आस्था से जुड़े हमारे संस्कार जैसे – कर्णभेदन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास, सोलह संस्कार आदि हमारी संस्कृति की व्यापकता को दर्शाते हैं।

गहरी अनुभूति, संवेदना और उदात्त भावना से ओत–प्रोत भारतीय संस्कृति की मूल अभिव्यक्ति आध्यात्मिक है। इसमें शांति को आवश्यक माना गया है। पुरुषार्थ का सर्वथा संतुलन, धर्मानुमोदित काम, अर्थ का सेवन ही भारतीय संस्कृति का परिचायक है। संस्कृति निर्माण में स्त्रियॉ की महत्ता बताते हुए डॉ० बी० एन० लूनिया ने लिखा है कि – "किसी भी सभ्यता और संस्कृति के स्तर, धारणाओं, भावनाओं आदि को समझने और उनका मूल्यांकन करने के लिए उस सभ्यता और संस्कृति में स्त्रियों की साधारण दशा, उनके अधिकारों, स्वत्वों, और स्तर को जान लेना आवश्यक है। यदि समाज में स्त्रियों का स्तर ऊंचा है, उन्हें विभिन्न अधिकार प्राप्त हैं, समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त है। विभिन्न ललित कलाओं में उनकी प्रशंसनीय उपलब्धियां हैं तो उस समाज की संस्कृति का स्तर श्रेष्ठ है।"[८] प्राचीन भारत में महिलाओं की दशा आधुनिक युग की अपेक्षा अच्छी थी।" नारी को भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। मनु नें स्त्रियॉ को भारतीय संस्कृति में पूज्य घोषित किया – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' भारतीय संस्कृति स्त्री को संतानदात्री ही नहीं मानती अपितु पति को परामर्श देने वाली और सखा की भूमिका निभानेवाली मानती है।

अंत में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति व्यक्ति की आचरण की शुद्धता, आत्म – नियंत्रण, त्याग, स्वार्थ विहीन होकर सामाजिक कल्याण की भावना पर अधिक ज़ोर देती है जब समाज का प्रत्येक घटक आत्मशुद्धि पर ध्यान देता है, स्वार्थवृत्ति पर नियंत्रण रखता है तब सपूर्ण समाज निर्मल हो जाता है। इस संदर्भ में अकबर और बीरबल का एक किस्सा याद आता है – जब बीरबल की सलाह से अकबर ने नगर के किनारे पर तालाब खुदवाया और प्रत्येक को आज्ञा दी गई कि रात को एक–एक घड़ा दूध उसमें छोड़ दें। योजना यह थी कि एक दूध का तालाब दूसरे दिन तैयार हो जाएगा। पर दूसरे दिन सुबह जब अकबर, बीरबल के साथ वहाँ पहुँचे तो देखा कि तालाब जल से परिपूर्ण है और दूध का नाम नहीं है। बात यह थी कि प्रत्येक ने सोचा कि सब तो दूध डालेंगे यदि मैं एक घड़ा पानी डाल दूँगा तो उतने दूध में क्या पता चलेगा। जहाँ व्यक्ति अपनी ओर, अपने कर्तव्य की ओर नहीं देखता वहाँ यही स्थिति होती है। भाषा, कला, धर्म, शिक्षा, विज्ञान, रेडियो और टेलीविज़न पर प्रसारित कार्यक्रमों में हमारी संस्कृति की झलक दिखाई देती है। भारतीय समाज में बढ़ती हिंसा, अविश्वास, घृणा, विघटन और नैतिक अवमूल्यन हमारी संस्कृति के विकृत रूप को दर्शाते हैं। आधुनिक अपसंस्कृति और पश्चिमी चकाचौंध में हम अपनी शिक्षा, आचार–विचार, वेषभूषा, रहन–सहन तथा खान–पान की दृष्टि से हम अपनी जीवंत एवं आदर्श संस्कृति से दूर होते जा रहें हैं। आज आधुनिक परिवेश में आवश्यक है कि हम श्रद्धा, प्रेम, आस्था, दृड़विश्वास से अनुप्रेरित होकर भारतीय संस्कृति से जुड़े विषयों की ओर आकर्षित हो तथा भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण एवं निरंतर प्रवाहित मूलधारा को अपनी संवेदनाओं और भावनाओं से सिंचित कर उसे पुनर्जीवित करें।

संदर्भ – सूची

१. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ११

२. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ८ – ६

३. भारत का सांस्कृतिक इतिहास : डॉ० राजेन्द्र पाण्डेय, पृ० १

४. कला और संस्कृति : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १

५. कोश : बृहद हिन्दी कोश, प्रामाणिक शब्द कोश, हिन्दी शब्द सागर

६. भारतीय धर्म और दर्शन : आचार्य बलदेव, पृ० २३२

७. साहित्य और संस्कृति : मोहन राकेश, पृ० ५०–५१

८. प्राचीन भारतीय संस्कृति : डॉ० बी० एन० लूनिया, पृ० ७१२

६.. अन्य सहायक ग्रंथ :

शिक्षा और संस्कृति : डॉ० रामानन्द तिवारी 'भारतीनंदन'

भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य : डॉ० बैजनाथ पुरी